अध्याय – 10

भय : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

लेखक परिचय –

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म सन् 1886 में हुआ। आचार्य शुक्ल हिंदी साहित्य के सर्वोत्कृष्ट गद्यकार हैं। उनका 'हिंदी साहित्य का इतिहास' अत्यंत प्रामाणिक ग्रंथ है। 'हिंदी शब्द सागर', 'भ्रमर गीत सार', 'जायसी ग्रंथावली', 'तुलसी साहित्य', आदि विविध ग्रंथों का उन्होंने संपादन किया। हिंदी की सैद्धांतिक समीक्षा के मानदण्डों की स्थापना के संदर्भ में शुक्ल जी का अप्रतिम योगदान रहा है। वे मूलतः आलोचक और विचारक थे। 1904 ई. से उनके निबंध 'सरस्वती' और 'आनन्द कादम्बिनी' आदि प्रमुख पत्रिकाओं में छपते रहे। प्रौढ़ निबंधों का संग्रह चिंतामणि भाग एक व दो प्रकाशित हुआ। चिंतामणि भाग 1 पर उन्हें 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' प्राप्त हुआ।

'उत्साह', 'करुणा', 'क्रोध', 'श्रद्धा–भक्ति', 'लज्जा और ग्लानि', 'लोभ और प्रीति', 'घृणा', 'भय' आदि मनोविकारों संबंधी निबंधों में उनके मन और बुद्धि का अद्‌भुत सामंजस्य दिखाई देता है। इन निबंधों के माध्यम से शुक्ल जी ने लोक की विविध परिस्थितियों के आचार–व्यवहार तथा अनेकानेक संघर्षों के बीच पड़े हुए मन की व्याख्या की है। सुख व दुःख की मूल प्रवृत्तियाँ ही जीवन को गतिशील बनाती हैं।

पाठ परिचय –

'भय' नामक मनोविकार दुःखात्मक संवर्ग का भाव है। मनुष्य जीवन में प्राणि जगत की सत्ता में सुख और दुःख मूल आधार हैं, मूल प्रवृत्ति हैं। शुक्लजी ने इस विचार–प्रधान निबंध में भय की अनुभूति को लोक–व्यवहार की दृष्टि से बड़ी सूक्ष्मता और विशदता से स्पष्ट किया है। जिस पर अपना वश न हो ऐसे कारण से पहुँचने वाले भावी अनिष्ट के निश्चय से जो दुःख होता है वह भय कहलाता है। छोटे बालक को, जिसमें यह निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती, भय कुछ भी नहीं होता। जब हमारी इंद्रियाँ दूर से आने वाली क्लेश कारिणी बातों का पता देने लगती हैं; तब हमारा अन्तःकरण भावी आपदा का निश्चय कराने लगता है; तब हमारा काम दुःख मात्र से नहीं चल सकता, बल्कि भागने या बचने की प्रेरणा करने वाले भय से चल सकता है।

इस प्रकार भाव या मनोविकार मानव जीवन के प्रेरक होते हैं। इनसे लोक कल्याण के व्यापक उद्‌देश्य की सिद्धि भी होती है। शुक्ल जी ने निबंध में भाव की केवल मनोवैज्ञानिक प्रामाणिकता ही सिद्ध नहीं की है, वरन् लोक व्यवहार और साहित्यिक अभिव्यक्ति के मध्य संगति भी

स्थापित की है। कर्मक्षेत्र के चक्रव्यूह में जैसे सुखी होना प्रयत्न साध्य है वैसे ही निर्भय रहना भी। इस आवश्यकता से हम बच नहीं सकते।

मूल पाठ –

किसी आती हुई आपदा की भावना या दुःख के कारण के साक्षात्कार से जो एक प्रकार का आवेगपूर्ण अथवा स्तम्भ–कारक मनोविकार होता है उसी को भय कहते हैं। क्रोध दुःख के कारण पर प्रभाव डालने के लिए आकुल करता है और भय उसकी पहुँच से बाहर होने के लिए। क्रोध दुःख के कारण के स्वरूप–बोध के बिना नहीं होता। यदि दुःख का कारण चेतन होगा और यह समझा जाएगा कि उसने जान–बूझकर दुःख पहुँचाया है, तभी क्रोध होगा। पर भय के लिए कारण का निर्दिष्ट होना जरूरी नहीं; इतना भर मालूम होना चाहिए कि दुःख या हानि पहुँचेगी। यदि कोई ज्योतिषी किसी गँवार से कहे कि ''कल तुम्हारे हाथ–पाँव टूट जाएँगे'' तो उसे क्रोध न आएगा, भय होगा। पर उसी से यदि कोई दूसरा आकर कहे कि ''कल अमुक–अमुक तुम्हारे हाथ–पैर तोड़ देंगे'' तो वह तुरंत त्योरी बदल कर कहेगा कि ''कौन हैं हाथ–पैर तोड़ने वाले ? देख लूँगा।''

भय का विषय दो रूपों में सामने आता है – असाध्य रूप में और साध्य रूप में। असाध्य विषय वह है जिसका किसी प्रयत्न द्वारा निवारण असंभव हो या असंभव समझ पड़े। साध्य विशय वह है जो प्रयत्न द्वारा दूर किया या रखा जा सकता हो। दो मनुष्य एक पहाड़ी नदी के किनारे बैठे या आनंद से बातचीत करते चले जा रहे थे। इतने में सामने से भोर की दहाड़ सुनाई पड़ी। यदि वे दोनों उठकर भागने, छिपने या पेड़ पर चढ़ने आदि का प्रयत्न करें तो बच सकते हैं। विषय के साध्य या असाध्य होने की धारणा परिस्थिति की विशेषता के अनुसार तो होती ही है पर बहुत कुछ मनुश्य की प्रकृति पर भी अवलम्बित रहती है। क्लेश के कारण का ज्ञान होने पर उसकी अनिवार्यता का निश्चय अपनी विवशता या अक्षमता की अनुभूति के कारण होता है। यदि यह अनुभूति कठिनाइयों और आपत्तियों को दूर करने के अनभ्यास या साहस के अभाव के कारण होती है, तो मनुष्य स्तम्भित हो जाता है और उसके हाथ–पाँव नहीं हिल सकते। पर कड़े दिल का या साहसी आदमी पहले तो जल्दी डरता नहीं और डरता भी है तो संभल कर अपने बचाव के उद्योग में लग जाता है।

भय जब स्वभावगत हो जाता है तब कारयता या भीरुता कहलाता है और भारी दोष माना जाता है, विशेषतः पुरुषों में। स्त्रियों भीरुता तो उसकी लज्जा के समान ही रसीकों के मनोरंजन की वस्तु रही है। पुरुषों की भीरुता की पूरी निंदा होती है। ऐसा जान पड़ता है कि पुराने जमाने से पुरुषों ने न डरने का ठेका ले रखा है। भीरुता के संयोजक अवयवों में क्लेश सहने की आवश्यकता और उसकी भाक्ति का अविश्वास प्रधान है। भात्रु का सामना करने से भागने का अभिप्राय यही होता है कि भागने वाला शारीरिक पीड़ा नहीं सह सकता तभी अपनी भाक्ति के द्वारा उस पीड़ा से अपनी भाक्ति का विश्वास नहीं रखता। यह तो बहुत पुरानी चाल की भीरुता हुई। जीवन के और अनेक व्यापारों में भी भीरुता दिखाई देती है। अर्थ हानि के भय से बहुत–से व्यापारी कभी–कभी किसी विशेष व्यवसाय में हाथ नहीं डालते, परास्त होने के भय से बहुत से पंडित कभी–कभी शास्त्रार्थ से

मुँह चुराते हैं। इस प्रकार की भीरुता की तह में सहन करने की अक्षमता और अपनी भाक्ति का अविश्वास छिपा रहता है। भीरु व्यापारी में अर्थ हानि सहने की अक्षमता और अपने व्यवसाय कौशल पर अविश्वास तथा भीरु पंडित में मानहानि सहने की अक्षमता और अपने विद्या –बुद्धि–बल पर अविश्वास निहित है।

एक ही प्रकार की भीरुता ऐसी दिखाई पड़ती है जिसकी प्रशंसा होती है। वहाँ धर्म–भीरुता है। पर हम तो उसे भी कोई बड़ी प्रशंसा की बात नहीं समझते। धर्म से डरने वालों की अपेक्षा धर्म की ओर आकर्षित होने वाले हमें अधिक धन्य जान पड़ते हैं। जो किसी बुराई से यही समझकर पीछे हटते हैं कि उसके करने से अधर्म होगा, उसकी अपेक्षा वे कहीं श्रेश्ठ हैं जिन्हें बुराई अच्छी ही नहीं लगती। दुःख या आपत्ति की पूर्ण निश्चय न रहने पर उसकी संभावना–मात्र के अनुमान से जो आवेग–शून्य भय होता है, उसे आशंका कहते हैं। उसमें वैसी आकुलता नहीं होती। उसका संचार कुछ धीमा पर अधिक काल तक रहता है। घने जंगल से जाता हुआ यात्री चाहे रास्ते भर इस आशंका में रहे कि कहीं चीता मिल जाए, पर वहाँ बराबर चला चल सकता है। यदि उसे असली भय हो जाएगा तो वह या तो लौट जाएगा अथवा एक पैर आगे न रखेगा। दुखात्मक भावों में आ ांका की वही स्थिति समझनी चाहिए जो सुखात्मक भावों में आशा की। अपने द्वारा कोई भयंकर काम किए जाने की कल्पना या भावना–मात्र से भी क्षणिक स्तम्भ के रूप में इस प्रकार के भय का अनुभव होता है। जैसे कोई किसी से कहे कि ''इस छत से कूद जाओ'' तो कूदना और न कूदना उसके हाथों में होते हुए भी वह कहेगा कि ''डर मालूम होता है।'' पर यह डर भी पूर्ण भय नहीं है।

क्रोध का अभाव दुःख के कारण पर डाला जाता है, इससे उसके द्वारा दुःख का निवारण यदि होता है तो सब दिन के लिए या बहुत दिनों के लिए। भय के द्वारा बहुत–सी अवस्थाओं में यह बात नहीं हो सकती। ऐसे सज्ञान प्राणियों के बीच जिनमें भाव बहुत काल तक संचित रहते हैं और ऐसे उन्नत समाज में जहाँ एक–एक व्यक्ति की पहुँच और परिचय का विस्तार बहुत अधिक होता है, प्रायः भय का फल भय के संचार–काल तक ही रहता है। जहाँ वह भय भूला कि आफत आई। यदि कोई क्रूर मनुष्य किसी बात पर आपसे बुरा मान गया और आपको मारने दौड़ा तो उस समय भय की प्रेरणा से आप भाग कर अपने को बचा लेंगे। पर संभव है कि उस मनुष्य का क्रोध जो आप पर था उसी समय दूर न हो, बल्कि कुछ दिन के लिए बैर के रूप में टिक जाए तो उसके लिए आपके सामने फिर आना कोई बड़ी बात नहीं होगी। प्राणियों की असभ्य दशा में ही भय से अधिक काम निकलता है, जबकि समाज का ऐसा गहरा संगठन नहीं होता है कि बहुत–से लोगों को एक–दूसरे का पता और उसके विषय में जानकारी रहती हो।

जंगली मनुष्यों के परिचय का विस्तार बहुत थोड़ा होता है। बहुत–सी ऐसी जंगली जातियाँ अब भी है, जिनमें कोई एक व्यक्ति 20–25 से अधिक आदमियों को नहीं जानता। अतः उसे 10–12 कोस पर ही रहने वाला यदि कोई जंगली मिले और मारने दौड़े तो वह भागकर उससे अपनी रक्षा उसी समय के लिए नहीं नहीं, बल्कि सब दिनों से कर सकता है। पर सभ्य, उन्नत और विस्तृत

समाज में भय के द्वारा स्थायी रक्षा की उतनी संभावना नहीं होती। इसी से जंगली और असभ्य जातियों में भय अधिक होता है। जिससे वे भयभीत हो सकते हैं। उसी को वे श्रेष्ठ मानते हैं और उसी की स्तुति करते हैं। उसके देवी–देवता भय के प्रभाव से ही कल्पित होते हैं। किसी आपत्ति या दुःख से बचे रहने के लिए ही अधिकतर वे उसकी पूजा करते हैं। अति भय और भय कारक का सम्मान असभ्यता के लक्षण हैं। अशिक्षित होने के कारण अधिकांश भारतवासी भी भय के उपासक हो गए हैं। वे जितना सम्मान एक थानेदार का करते हैं, उतना किसी विद्वान का नहीं।

चलने–फिरने वाले बच्चों में, जिनमें भाव देर तक नहीं टिकते और दुःख परिहार का ज्ञान या बल नहीं होता, भय अधिक होता है। बहुत–से बच्चे तो किसी अपरिचित आदमी को देखते ही घर के भीतर भागते हैं। पशुओं में भी भय अधिक पाया जाता है। अपरिचित के भय में जीवन का कोई गूढ़ रहस्य छिपा जान पड़ता है। प्रत्येक प्राणी भीतरी आँख खुलते ही अपने सामने मानों एक दुःख–कारण पूर्ण संसार फैला हुआ पाता है जिसे क्रमशः कुछ अपने ज्ञान बल से और कुछ बाहुबल से थोड़ा–बहुत सुखमय बनाता चलता है। क्लेश और बाधा का ही सामान्य आरोप करते जीवन संसार में पैर रखता है। सुख और आनंद को वह सामान्य का व्यतिक्रम समझता है; विरल विशेष मानता है। इन विशेष से सामान्य की ओर जाने का साहस उसे बहुत दिनों तक नहीं होता। परिचय के उत्तरोत्तर अभ्यास के बल से अपने माता–पिता या नित्य दिखाई पड़ने वाले कुछ थोड़–से और लोगों के ही संबंध में वह यह धारणा रखता है कि वे मुझे सुख पहुँचाते हैं और कष्ट न पहुँचाएँगे। जिन्हें वह नहीं जानता, जो पहले–पहल उसके सामने आते हैं, उनके पास वह बेधड़क नहीं चला जाता। बिल्कुल अज्ञात वस्तुओं के प्रति भी वह ऐसा ही करता है।

भय की इस वासना का परिहार क्रमशः होता चलता है। ज्यों–ज्यों वह नानारूपों से अभ्यस्त होता है त्यों–त्यों उसकी धड़क खुलती जाती है। इस प्रकार अपने ज्ञानबल, हृदयबल और शरीरबल की वृद्धि के साथ वह दुःख की छाया मानों हटाता चलता है। समस्त मनुष्य–जाति की सभ्यता के विकास का ही यही क्रम रहा है। भूतों का भय तो अब बहुत कुछ छूट गया है, पशुओं की बाधा भी मनुष्य के लिए प्रायः नहीं रह गई है; पर मनुष्य के लिए मनुश्य का भय बना हुआ है। इस भय के छूटने के लक्षण भी नहीं दिखाई देते। अब मनुष्यों के दुःख का कारण मनुष्य ही है। सभ्यता से अंतर केवल इतना ही पड़ा है कि दुःख–दान की विधियाँ बहुत गूढ़ और जटिल हो गई हैं। उसका क्षोभकारक रूप बहुत–से आवरणों के भीतर ढक गया है। अब इस बात की आशंका तो नहीं रहती है कि कोई जबरदस्ती आकर हमारे घर, खेत, बाग–बगीचे, रुपये–पैसे छीन न ले, पर इस बात का खटका रहता है कि कोई नकली दस्तावेजों, झूठे गवाहों और कानूनी बहसों के बल से इन वस्तुओं से वंचित न कर दे। दोनों बातों का परिणाम एक ही है।

सभ्यता की वर्तमान स्थिति में एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से वैसा भय तो नहीं रहा जैसा पहले रहा करता था, पर एक जाति को दूसरी जाति से, एक देश को दूसरे देश से, भय के स्थायी कारण प्रतिष्ठित हो गए हैं। सबल और सबल देशों के बीच अर्थ–संघर्ष की, सबल और निर्बल देशों

के बीच अर्थ–शोषण की प्रक्रिया अनवरत चल रही है; एक क्षण का विराम नहीं है। इस सार्वभौम वणिग्वृत्ति से उसका अनर्थ कभी न होता यदि क्षात्रवृत्ति उसके लक्ष्य से अपना लक्ष्य अलग रखती। पर इस युग में दोनों का विलक्षण सहयोग हो गया है। वर्तमान अर्थोन्माद को शासन के भीतर रखने के लिए क्षात्रधर्म के उच्च और पवित्र आदर्श को लेकर क्षात्रसंघ की प्रतिष्ठा आवश्यक है।

जिस प्रकार सुखी होने का प्रत्येक प्राणी को अधिकार है, उसी प्रकार मुक्तातंक होने का भी। पर कर्म–क्षेत्र के चक्रव्यूह में पड़कर जिस प्रकार सुखी होना प्रयत्न–साध्य होता है उसी प्रकार निर्भय रहना भी। निर्भयता के संपादन के लिए दो बातें अपेक्षित हैं – पहली तो यह कि दूसरों के हमसे किसी प्रकार का भय या कष्ट न हो; दूसरी यह कि हमको कष्ट या भय पहुँचाने का साहस न कर सके। इनमें से एक का संबंध उत्कृष्ट शील से है और दूसरी का शक्ति और पुरुषार्थ से। इस संसार में किसी को न डराने से ही डरने की संभावना दूर नहीं हो सकती। साधु–से साधु प्रकृति वाले को क्रूर लोभियों से क्लेश पहुँचता है। अतः उसके प्रयत्नों को विफल या भय–संचार द्वारा रोकने की आवश्यकता से हम बच नहीं सकते।

शब्दार्थ –

निर्दिष्ट – नियत किया हुआ / त्यौंरी–टेढ़ी भृकुटी / असाध्य–न होने योग्य, कठिन / निवारण–हटाना, रोकना / भीरुता–कायरता / डरपोकपन / अवयव–भाग, अंग / आवेश–जोश, तैश / सज्ञान–ज्ञान सहित / विलक्षण–अनूठा / संचित–एकत्रित / व्यतिक्रम–बाधा, क्रम का उलटफेर / विरल–बहुत कम, जो घना न हो, पतला / अभ्यस्त–निपुण, जिसका अभ्यास किया गया हो / क्षोभकारक–विचलित करने वाला / दस्तावेज–व्यवहार संबंधी लेख / आवरण–पर्दा, ढकना / वणिग्वृत्ति–वैश्य वृत्ति / क्षात्रवृत्ति–क्षत्रिय धर्म।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. दुःख या आपत्ति का पूर्ण निश्चय न होने पर कौन–सा मनोभाव उत्पन्न होता है ?
   (क) भय (ख) क्रोध
   (ग) लज्जा (घ) आशंका ( )
2. ''कल तुम्हारे हाथ–पाँव टूट जाएँगे'' ऐसा वाक्य सुनकर क्या अनुभूत होगा ?
   (क) क्रोध (ख) निराशा
   (ग) भय (घ) उत्साह ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. साहसी व्यक्ति कठिनाई में फँस जाने पर क्या करता है ?
2. भय क्या है ?
3. क्रोध और भय में क्या अंतर है ?
4. भय भीरुता में कब बदल जाता है ?
5. ऐसी कौन–सी भीरुता है, जिसकी प्रशंसा होती है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. आशंका और भय में अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. व्यापारी द्वारा नया व्यापार शुरू न करने, पंडित का शास्त्रार्थ में भाग न लेने का मूल कारण क्या हो सकता है ?
3. भय की अधिकता किसमें रहती है ?
4. सभ्य और असभ्य प्राणियों के भय में क्या अंतर है ?

निबंधात्मक प्रश्न –

1. दुःख की छाया को हटाने के लिए व्यक्ति किन बलों का उपयोग करता है ? और कैसे?
2. सभ्यता से अंतर केवल इतना पड़ा है कि दुःख–दान की विधियाँ बहुत गूढ़ और जटिल हो गई हैं।'' पंक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए।
3. भय के साध्य और असाध्य दोनों रूपों को सोदाहरण समझाइए।
4. मनुष्य के भय की वासना का परिहार कैसे होता है ?
5. निर्भयता के लिए शुक्ल जी ने क्या उपाय बताए हैं ?
6. निम्नलिखित गद्यांश की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

   (क) 'धर्म से डरने.....अच्छी ही नहीं लगती।'

   (ख) 'भय नामक मनोविकार .....भय से चल सकता है।'

* * * * *